ANUSANDHANVALLARI
ISSN: 2229-3388

Anusandhanvallari
Vol 2025, No.1
January 2025
ISSN 2229-3388

भक्तिकाल में जाति विरोधी चेतना: सामाजिक समता का आध्यात्मिक विमर्श।

अलका निमेश

शोधार्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय

सारांश – *भक्ति आंदोलन मध्यकाल का वह सामाजिक आंदोलन कहा जा सकता है जिसने समाज में आध्यात्मिक समानता को स्थापित करने का प्रयास किया। ईश्वर के प्रति सच्ची भक्ति एवं मानवता स्थापित करने वाला यह आंदोलन भारत के विभिन्न हिस्सों में फैला। भक्ति आंदोलन का सबसे महत्वपूर्ण पहलू सामाजिक समानता पर आधारित था। समाज में व्याप्त असमानता पर विरोध जताते हुए भक्ति संतों ने ईश्वर की दृष्टि में सभी को समान बताया एवं समाज में, प्रेम, सहिष्णुता और भाईचारा स्थापित करने की पेरवी की। 7 वी से 17 वी शताब्दी के बीच उभरे इस आंदोलन को सामाजिक – धार्मिक आंदोलन भी कहा जाता है। प्रस्तुत शोध पत्र भक्तिकाल के उन महान संतों के विचारों पर प्रकाश डालता है जिन्होंने सामाज की आखिरी पंक्ति के लोगों को आध्यात्मिक समानता का अवसर प्रदान कराया। इन प्रमुख संतों ने भारतीय समाज में स्थापित उंच- नीच के भेदभाव पर प्रहार करते हुए समानता और मानवता की बात कही। इस शोध पत्र में जिन प्रमुख संतों की चर्चा की गई है वे हैं – संत कबीर, संत चौखामेला, संत रविदास एवं संत तुकाराम।*

बीज-शब्द – भक्तिकाल, सामाजिक समानता, आध्यात्म, रविदास, कबीर, तुकाराम, चौखामेला

समर्पण और व्यक्तिगत संवाद के माध्यम से ईश्वर की पूजा करने का एक रूप भक्ति हैं। सभी भक्तजन ईश्वर के समक्ष सामने जाते हैं। पन्द्रहवी शताब्दी के बाद, भक्ति आंदोलन में दो परंपराओं का उदय हुआ : सगुण और निर्गुण। प्रथम परंपरा में अधिकांशतः विष्णु या शिव के रूप में ईश्वर के स्वरूप में विश्वास किया जाता हैं। जो वैष्णव व शैव परंपराओं से जुड़ी हुई हैं। यह परंपरा सभी जातियों में समानता पर बल देती हैं। तथापि उसमें 'वर्णाश्रम धर्म' और जाति के सामाजिक क्रम की बात कहीं गई हैं। निर्गुण परंपरा के भक्तजन एक आकार रहित सर्वव्यापी ईश्वर में विश्वास करते हैं। रविदास और कबीर इस परंपरा के मुख्य व्यक्ति हैं। आंशिक रूप में इसका विकास ब्राह्मणवादी संस्तरणात्मक व्यवस्था को रोकने के लिए हुआ था।[1] यह परंपरा 20वी सदी के प्रारम्भिक वर्षो में नगरीय क्षेत्रों के दलितों में काफी लोकप्रिय हुई। क्योंकि यह सभी को मुक्ति की संभावना प्रदान करती हैं। यह सामाजिक समता का वादा करती है। फुलर कहते हैं उन आंदोलनों के द्वारा 'भक्तिवादी नैतिकता को संतवाद के घोषणापत्र के एक रूप में व्यापक रूप में पुर्नभाषित किया गया हैं। [2]

लगभग एक हजार वर्ष तक, भक्ति आंदोलन ही निम्न जाति के पुरुष व स्त्रियों के लिए प्रमुख धार्मिक अभिव्यक्ति रहें। जिनमें कुछ ऐसे व्यक्ति भी शामिल थे जिन्हे सबसे नीची जात के अछूत माना जाता था। वे चमड़ा रंगने जैसे या अन्य दूषित कार्य करते थे जिनके करण उन्हे अछूत माना जाता था। इन आंदोलनों के अग्रणी महापुरषों को 'संत' कहा जाता है और यह शब्द अंग्रेजी के 'saint' शब्द के इतना निकट है कि इसके अनुवाद की भी आवश्यकता नहीं हैं। हालांकि जहां कैथोलिक संतों को किसी गिरजे के पदानुक्रम से मान्यता मिलती है। वही भक्ति आंदोलन के संत ऐसे भक्त थे जिन्हे किसी धार्मिक प्रतिष्ठान की अपेक्षा लोगों से मान्यता मिली थी।[3]

1. भक्ति आंदोलन की वैचारिकी।

भक्ति आंदोलनों को भारत के विभिन्न प्रांतों की राष्ट्रीय – भाषा संबंधी संस्कृतियों से भी मान्यता प्राप्त हुई। स्वभाविक तौर पर, इन आंदोलनों का विश्लेषण विवादित रहा। जहां 19वी और 20 वी सदियों के जाति– विरोधी उग्र सुधारवादियों ने इन्हे सम्पूर्ण रूप से नकारा वहीं अन्य लोगों को इन निम्न जाति के भक्तों में आशा और सांत्वना की किरण दिखाई दी। उनके अनुसार ये संत शोषितों के धार्मिक विद्रोह का प्रतिनिधित्व कर रहें थे और निम्न जाति की रचनात्मकता का प्रमाण थे। प्रायः इन्हे बौद्ध धर्म से प्रेरित माना जाता था। अक्सर बौद्ध धर्म और भक्ति आंदोलनों को रूढ़िवादी ब्रह्मणवाद के प्रति 'विद्रोह आंदोलनों' की श्रेणी में रखा जाता हैं। इन दो कारणों से ही इनका विश्लेषण महत्वपूर्ण हो जाता है।[4]

इस अवधि के दौरान, जाति-विरोधी आंदोलन की एक और लहर भक्ति आंदोलन के रूप में उभरी, जो सातवीं और दसवीं शताब्दी के बीच दक्षिण में उत्पन्न हुई। जबकि कई विद्वानों ने इस आंदोलन में प्रभाव का पता लगाया ईसाई धर्म और इस्लाम जैसे सेमेटिक धर्म जो उस समय तक दक्षिण में अच्छी तरह से स्थापित हो चुके थे, जहाँ तक इसका जोर एकेश्वरवाद पर था; भावनात्मक पूजा; आत्म-समर्पण; शिक्षक की आराधना; अनुष्ठानों के प्रति उदासीनता; संस्कृत की अस्वीकृति और स्थानीय भाषा के उपयोग और जाति पदानुक्रम पर ध्यान दिया गया, ऐसा प्रतीत होता है कि यह तमिल साहित्य और बौद्ध धर्म जैसे विविध स्रोतों से लिया गया है।

[1] लेले, जयंत, *ट्रेडिसन एण्ड माडर्निटी इन भक्ति मूवमेंटस'* ,लाइडेन, ई. जे ब्रिल।

[2] फुलर, सी. जे.,(1992), *"द केमफेर फ्लैमः पोपुलर हिंदूइज़्म एण्ड सोसाइटी इन इंडिया'* , प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, प्रिंसटन, पृ - 158

[3] ओमवेट गेल, भारत में बौद्‌ध धर्म ..

[4] वही

2. भक्तिकाल एवं प्रमुख संतों के विचार।

भक्ति आंदोलन एक एकीकृत आंदोलन नहीं था, लेकिन जाति के संबंध में, यह कम से कम इसके कुछ कट्टरपंथी पहलुओं जैसे कबीर पंथ, व्यक्तिवादी और जाति के खिलाफ कॉर्पोरेट विरोधी विद्रोह में प्रतिबिंबित हुआ। इसने रविदास, चोखामेला, कनक और नंदनारा जैसे कई निम्न-जाति के व्यक्तियों और महिलाओं (राजस्थान में मीराबाई, कर्नाटक में अक्कमहादेवी और महाराष्ट्र में सायराबाई [चोखामेला की पत्नी]) को संत की उपाधि तक पहुँचाया और एक आशा दी एवं निचली जाति के समूहों और महिलाओं के लाखों लोगों को मुक्ति भी। हालाँकि इन व्यक्तियों ने भक्त बनने के लिए दलित समुदायों पर लगाए गए जाति प्रतिबंधों को तोड़ दिया, लेकिन वे केवल मानवीय समानता का प्रचार कर सकते थे और जाति प्रथाओं की आलोचना कर सकते थे। समाज पर उनका प्रभाव केवल अध्यात्मवाद तक ही सीमित था और उन्होंने मोक्ष को मोक्ष का मार्ग बताया। भक्ति विधा दलितों की सामाजिक आर्थिक समस्याओं से मुक्ति के लिए पर्याप्त नही थी क्योंकि यह आध्यात्मिक स्तर पर मुक्ति की अधिक तलाश करती थी। व्यक्तिगत स्तर पर भक्ति संतों की नैतिक वैचारिक अपील सामाजिक प्रथा को नुकसान नहीं पहुंचा सकी क्योंकि इसे सामाजिक उत्पादन के किसी तरीके द्वारा समर्थित नहीं किया गया था। भक्ति आंदोलन जाति पदानुक्रम पर सेंध लगाने में विफल रहा क्योंकि ग्रामीण स्तर पर, खाद्यान्न और अन्य आवश्यकताओं की उत्पादन प्रणाली श्रम के जाति-आधारित विभाजन के साथ अटूट रूप से जुड़ी हुई थी।[5] इसी काल में कुछ महत्वपूर्ण संत हुए हैं जिन्होंने भक्ति काल में सामाजिक समानता की बात कहीं। नीचे इन प्रमुख संतों के विचारों पर प्रकाश डाला गया है।

2.1 कबीर।

कबीर भक्ति आंदोलन के प्रभावशाली व्यक्तियों में से एक थे, जो भारत में आठवी शताब्दी के आसपास शुरू हुआ था। भक्ति आंदोलन, ईश्वर के प्रति प्रेम और भक्ति पर एक मजबूत ध्यान के साथ समन्वित था। इस आंदोलन ने अपने आप को धार्मिक क्षेत्र तक सीमित नहीं रखा। भक्ति आंदोलन के अनुयायियों ने उस समय की कई प्रतिगामी सामाजिक प्रथाओं पर सवाल उठाया। भक्ति आंदोलन को विद्वानों ने भक्ति और प्रेम मार्ग के माध्यम से मौजूदा सामाजिक व्यवस्था के विभाजन और अन्याय के खिलाफ विरोध और विद्रोह के साधन के रूप में देखा हैं।

माना जाता हैं कि कबीर 15 वी शताब्दी तक थे, लेकिन उसके आगे उनके जन्म और मृत्यु के लिए विशेष वर्ग निर्दिष्ट करना मुश्किल हैं। उनके कुछ अनुयायी बिना किसी तोड़ ऐतिहासिक प्रमाण के दावा करते हैं कि उनका जन्म 1398 सी. ई. में हुआ था। और उनकी मृत्यु 1518 सी. ई. में हुई थी। हालांकि कई आधुनिक विद्वान उनका जन्म 15 वी शताब्दी के मध्य में, 1440 सी.ई. के आसपास और मृत्यु 1518 सी. ई.में मानते हैं। कबीर की कविताएं, गीत और कहावतें जिन्हे 'कबीरवाणी' के नाम से जाना जाता है, उनकी मृत्यु के कई दशकों बाद ही एक्टरकी जाने लगी। कबीरवाणी में 'दोहा' कहे जाने वाली द्वीतियाँ और सबद या पद कहें जाने वाले लघु गीत शामिल हैं।

कबीर समाज से सभी सामाजिक बुराईयों, पदानुक्रमों और शोषण को दूर करना चाहते थे। उनके विचार में 'भक्ति', ईश्वर के प्रति लोगों की निष्ठा और प्रेम के माध्यम से प्राप्त की जा सकती हैं। उनके आदर्श समाज में अमीरों द्वारा गरीबों का शोषण नहीं होगा। यह आंशिक रूप से इसलिए हासिल हुआ हैं क्योंकि आदर्श समाज की उनकी अवधारणा में कोई निजी संपत्ति नहीं होगी। सभी संसाधन साझा किये जाएंगे। इसके अलावा जाति व्यवस्था जैसी भेदभावपूर्ण सामाजिक सरचना भी उनके आदर्श समाज में मोजूद नहीं होगी।[6]

कबीर (1440- 1518) संभवतः उत्तर भारतीय संतों में सर्वाधिक विख्यात है। उनका जन्म बनारस में निम्न जाति के जुलाहा परिवार में हुआ। कबीर इस विषय में सोभाग्यशाली रहें कि उन्हे पर्याप्त शोध का पात्र बनाया गया।, जिसके कारण उनसे जुड़े कुछ प्रसंग सबके सम्मुख प्रकट हो सके। उदाहरण के लिए लिंडा हैस और शुकदेव सिंह के लेखन में बीजक संग्रह का अंग्रेजी में सुंदर अनुवाद दिया गया है। कबीर निर्गुण भक्त है, वे सगुण भक्तों की तुलना में अपने प्रभु को बिना गुणों के चाहते हैं। वे अवतारवाद की अवधारणा से भी आकर्षित नहीं होते अर्थात अवतारवाद में उनका विश्वास नहीं हैं।

जहां कबीर को एक ऐसे संत के रूप में देखा जाता हैं जो हिन्दू धर्म व इस्लाम के बीच समन्वय का प्रतिनिधित्व करते हैं। जबकि वास्तव में हावले जुर्गमेयर के अनुसार, वे बड़ी कड़ाई से दोनों ही धर्मों, के रीति रिवाजों और पुरोहितवाद की आलोचना करते हैं। संभवतः सभी संतों में से वे ही एकमात्र ऐसे संत हैं जिन्होंने भक्तिवाद को प्रकट नहीं किया अर्थात स्वयं को की दिव्य प्राणी की दया के सहारे छोड़ देना इस पर उनका विश्वास नहीं था।[7]

कबीर का सामाजिक चिंतन जाति के प्रश्नों को विस्तार से छूता है। हिन्दी कविता के एक हजार बरस के इतिहास में कोई दूसरा कवि नहीं मिलता जिसने जाति के प्रश्नों पर कबीर की तरह विस्तार से विचार किया हो! वे वर्णाश्रम से शुरू करके विभिन्न जातियों के बारे में बात करते हुए मुसलमानों की जातियों को भी अपना विषय बनाते हैं. *'जो पैं करता बरण विचारै'* या *'तन मन धन बाजी लागी हो'* जैसे पदों में कबीर वर्णों की चर्चा करते हैं। *'आवध राम सबै करम करिहूँ'* पद में कबीर ने कुम्हार, धोबी, चमार, अघोरी,

---

5 M. N. Srinivasan, 'An Obituary on Caste as a System', Economic and Political Weekly, Vol. 38, No. 5, 1–7 February 2003, pp. 455–459.

6 रॉय, एच, (2017) ,*'पोलिटिकल आईडियास ऑफ कबीर",* इन सिंह, एण्ड रॉय, एच, (संपा) इंडियन पोलिटिकल थॉट(सेकंड इडिशन) नई दिल्ली, पियर्सन।

7 ओमवेट गेल , भारत में बौद्ध धर्म ..

तेली, क्षत्री, नउवा आदि जातियों का जिक्र किया है। अमरदेसवा वाले पद में वे मुगल, पठान, सैयद, शेख की चर्चा करते हैं। जुलाहा का जिक्र तो अनेक बार हुआ है। इस तरह से जातियों के ताने-बाने के लिहाज से कबीर की बुनावट सघन और विस्तृत है. वे किसी भी दूसरे कवि की तुलना में ज्यादा खुलकर इस विषय पर कविताएं रचते हैं। [8]

जातियों से जुड़ी कबीर की कविताएं मनमाना ब्योरा नहीं हैं। उनमें जातियों का समाजशास्त्र है। उनमें एक सजग बौद्धिक का पर्यवेक्षण है। उनके रूपकों को काव्यशास्त्र का उपकरण-भर नहीं समझा जा सकता है। हिन्दी कविता के इतिहास में कबीर एकमात्र कवि हैं, जिन्होंने जातियों से बने एक विराट समाज का दस्तावेजीकरण किया है। उनकी कविताओं में मौजूद यह सामग्री, उचित तरीके से व्याख्यायित करके, समाजशास्त्र के काम की हो सकती है। पन्द्रहवीं शताब्दी का यह जीवंत दस्तावेज मैदानी भारत के समाज को समझने में सहायता प्रदान कर सकता है।[9]

2.2 संत चोखामेला।

चौखामेला महाराष्ट्र के एक प्रसिद्ध संत थे। जिन्होंने कई 'अभंगों' की रचना की हैं। इसके कारण उन्हे भारत का दलित महार जाति का पहला कवि कहा गया है। सामाजिक –परिवर्तन के आंदोलन में चौखा मेला पहले संत थे जिन्होंने भक्ति –काल के दौर में सामाजिक-गैर बराबरी को लोगों के सामने रखा। अपनी रचनाओं में वे दलित समाज के लिए काफी चिंतित दिखाई पड़ते हैं। चौखामेला वारकरी संप्रदाय के थे। वार्करी संप्रदाय के अनुयायी जो पूरे महाराष्ट्र में फैले हैं। वारकारी का अर्थ हैं यात्री। वारकारी संप्रदाय के लोग प्रत्येक वर्ष पंडरपुर की यात्रा करते हैं। ये अभंग गाते हुए नंगे पैर चलते रहते हैं। अभंग और ओवी महाराष्ट्र के संतों की वाणी हैं। अभंग ओवी का ही एक रूप है जो महिलाएं गाती हैं।[10]

चौखामेला और उनका परिवार आजीवन महारों का पारंपरिक कार्य ही करते रहें हालांकि चौखामेला विठोबा (विष्णु) की पूजा करने की इच्छा से पंडरपुर के ब्राह्मण पुरोहितों का विरोध करते हैं और विठोबा चमत्कारिक रूप से उनकी इस काम के लिए उनकी सहायता करते हैं। लेकिन इस बात के साक्ष्य नहीं मिलते कि चोखामेला ने जाति दमन के लिए सक्रिय विरोध किया हो अथवा अपने पारंपरिक कर्तव्यों से बचने की इच्छा प्रकट की हो।[11]

वास्तव में, चौखामेला की कहानियाँ और उनके रचे गीतों में, भक्ति आंदोलन का वह मुक्तिदायनी बल नहीं मिलता, जिस हद तक उस काल में, भारत में जाति व्यवस्था ठोस रूप ले चुकी थी।[12] अछूत जाति महार से महराष्ट के एकमात्र महत्वपूर्ण भक्ति व्यक्तिव चौखामेला ने भक्ति गीतों (अभंगों) के माध्यम अस्पर्शयता और समाज में अपने तिरस्कृत स्थान के खिलाफ अपनी पीड़ा और विरोध व्यक्त किया। एक प्रतिष्ठित विद्वान परिवार के ब्राह्मण एकनाथ ने आध्यात्मिक मामलों में ब्राह्मणों से अधिक बुद्धिमान महार के रूप में चौखामेला के बारे में लिखा हैं। उन्होंने महारों के साथ भोजन किया और अछूतो को भी अपने भजन सत्र में शामिल होने की अनुमति दी।[13]

जेलीयट ने तर्क दिया है की राष्ट्रवाद की वृद्धि और महाराष्ट्र के अतीत में रुचि बढ़ने के साथ, अछूत प्रथा को कम करने और सामाजिक न्याय, समानता भाईचारे की भावना के आधुनिक विचारों को वैध बनाने के लिए भक्ति हस्तियों चौखा, एकनाथ का आह्वान किया गया। लेकिन वैधता के इन दो भक्ति तरीकों ने अंबेडकर आंदोलन को कोई खास प्रासांगिकता नहीं रखी।

2.3 संत रविदास।

रविदास, जिन्हे रैदास भी कहा जाता है 15 वी 16 वी शताब्दी के भक्ति आंदोलन के सबसे प्रसिद्ध संतों में से एक थे। रविदास का जन्म वाराणसी में एक अछूत चमड़े का काम करने वाली जाति के सदस्य के रूप में हुआ था, और उनकी कविताएं और गीत अक्सर उनकी निम्न सामाजिक स्थिति के इर्द- गिर्द घूमते है।

---

8 वर्मा कमलेश ,,फोरवॉर्ड प्रेस

9 वही

10 (*Zelliot, Eleanor (2008). "Chokhamela, His Family and the Marathi Tradition". प्रकाशित Aktor, Mikael; Deliège, Robert (संपा.). From Stigma to Assertion: Untouchability, Identity and Politics in Early and Modern India. Copenhagen: Museum Tusculanum Press. पपृ. 76-85. आई.ऍस.बी.ऍन. 8763507757.*

11 ओमवेट गेल , बुद्धिज्म इन इंडिया

12 वही

13 (*Zelliot, Eleanor (2008). "Chokhamela, His Family and the Marathi Tradition". प्रकाशित Aktor, Mikael; Deliège, Robert (संपा.). From Stigma to Assertion: Untouchability, Identity and Politics in Early and Modern India. Copenhagen: Museum Tusculanum Press. पपृ. 76-85. आई.ऍस.बी.ऍन. 8763507757.*

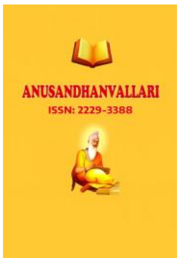

रविदास, उत्तर भारत के सर्वाधिक प्रसिद्ध संतों में से है और अन्य कई संतों के प्रेरणा स्रोत भी रहें हैं। उनके विषय में असंख्य कथाएं कहीं जाती हैं और उन्हे सगुण भक्तों में महानतम माना जाता हैं। सगुण भक्त से तात्पर्य ऐसे भक्त से हैं जो ईश्वर के साकार रूप को पूजते हो, जो शिव, राम, कृष्ण या अवतारों में से किसी भी देव को अपना निजी इष्ट मान कर आस्था रखता है।[14]

रविदास का संबंध एक अन्य महान उत्तर भारतीय संत कबीर से भी जोड़ा जाता है एक प्रसंग में इन दोनों के बीच भारी शास्त्रार्थ होता है। जिसे सगुण बनाम निर्गुण भक्ति वाद– विवाद के रूप में दर्शाया जाता है।[15] उनके गीतों में भक्ति व विनय का प्रदर्शन होता है: *'मैं तो राम का ब्योपारी ठहरा, उनके ही परमानन्द का व्यपार करता हूँ मैंने स्वयं को राम नाम रूपी धन से लाड़ लिया हैं जबकि पूरा संसार विषमग्न पड़ा हैं''*[16] हालांकि प्रमाणिक संग्रहों के अनुवाद में कबीर और तुकाराम की बाणीयों की तुलना में ब्रह्मणवाद और जाति की कठोर भर्त्सना का अभाव दिखाई देता है।

ईश्वर के संबंध में, सभी व्यक्ति, चाहे उनकी जाति कुछ भी हो, "अछूत" हैं, और "जिस परिवार में भगवान का सच्चा अनुयायी होता है वह न तो उच्च जाति का होता है, न ही निम्न जाति का न ही अमीर और न ही गरीब। रविदास अपनी कविता 'बैगमपुरा' में एक सांसारिक स्वप्नलोक का प्रतिपादन करते हैं जिसका अर्थ हैं 'एक दुख रहित शहर जिसका नाम दुख रहित है जहां कोई दर्द नहीं है और कोई कर नहीं है। जहां किसी के पास कोई संपत्ति नहीं है और सभी एक हैं, मित्रों की तरह। इसी तरह संत तुकाराम ने पंडरपुर की कल्पना एक स्वप्नलोक के रूप में की थी जहां समय और मृत्य नहीं पहुँच सकते यह प्रेम से भारी और पदानुक्रम रहित जगह हैं [17]

2.4 संत तुकाराम।

महाराष्ट्र के महान कवि तुकाराम (1608- 1649) ने 17 वी सदी में, भक्तिवाद में विद्रोह के बीज अंकुरित किये। उनके अभंगों का आरंभ, ''अच्छा हुआ तुमने मुझे कुनबी बनाया अन्यथा मैं एक दंभी पाखंडी के रूप में मर गया होता''। यह वाक्यांश ब्राह्मणवादी व्यवस्था के पाखंड पर आक्रमण हैं। वे आजीवन अपने शूद्र स्तर के प्रति विद्रोह करते रहें। तुकाराम एक ग्रामीण कृषक – जमीदार के सम्पन्न परिवार से थे, जो वर्तमान में पुणे शहर से बहुत दूर नहीं हैं। यधपि कुनबियों (जिन्हे बाद में मराठा कहा गया और महाराष्ट्र में प्रमुख जाति के रूप में दर्जा दिया गया) को शूद्र माना जाता था और ब्राह्मणवादी व्यवस्था के अनुसार, उन्हे ज्ञान प्राप्ति अथवा पुरोहिताई कर्म करने का अधिकार नहीं था। वे बीजापुर रियासत के शासन में रहते थे, जो किसी भी अन्य मुस्लिम शासन की भांति वर्णाश्रम नियमों को लागू करने का इच्छुक था। यधपि उनके जीवन के कुछ अंतिम वर्ष, नायक – राजा शिवाजी के जीवन के जीवन से मेल खाते हैं, जो एक स्वतंत्र मराठा राज्य के संस्थापक थे। तुकाराम के गीतों का प्रभावशाली तौर पर विशाल संकलन मिलता हैं, जिनमें से अधिकतर अभंगों के रूप में हैं। सरकार की ओर से प्रकाशित संग्रह में 4607 अभंग शामिल हैं। जहां एक ओर इस विशाल संग्रह में शक्तिशाली और भावात्मक भक्ति गीत है वही भावों का ऐसा उद्रेक मिलता हैं जिनमें तुकाराम बहुत गहराई से वार करते जाण पड़ते हैं, वहीं दूसरी ओर कुछ बहुत सादे और सुंदर गीत मिलते हैं, जो विठोबा (विष्णु) की स्तुति के लिए रचे गए। [18] इस प्रकार तुकाराम अपने अभंगों के द्वारा जाति व्यवस्था पर करारी चोट करते नजर आते हैं।

3. संतों का तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य।

चौखामेला और रविदास जैसे दलित संतों और तुकाराम और कबीर जैसे शूद्र संतों के बीच प्रत्यक्ष अंतर क्या हैं? संरक्षित साहित्य में यह स्पष्ट हैं कि दलितों ने बहुत अधिक व्यंगपूर्ण तथा तीखे तरीके रूप में, एक तंत्र के रूप में ब्राह्मणवाद की आलोचना नहीं की। इस अंतर का करण दलितों की असहाय स्थिति रहा होगा जो जाति पदानुक्रम में रहने वाले शूद्रों की तुलना में अछूत थे। उनके पास अपनी बात कहने के इए अवसर नहीं हैं। भक्ति वास्तव में ब्राह्मणों के हिन्दू धर्म के जाति पदानुक्रम के विरुद्ध विद्रोह था, जो प्रायः शामिल व्यक्ति के लिए साहसिक होता परंतु यह एक विद्रोह था जिसे अंततः इसके पदानुक्रम पर कहर उतरना पड़ता। [19]

भक्ति आन्दोलन के कवियों में कबीर और तुलसी के अलावा रैदास ने इस सवाल को महत्त्वपूर्ण बनाया। इन तीनों कवियों ने अलग-अलग तरीके से इस सवाल पर विचार किया। ऐसा नहीं है कि निर्गुण भक्ति की ज्ञानाश्रयी धारा के होने के कारण कबीर और रैदास की कविताओं में जाति के सवाल पर समान दृष्टि है! इस मामले में इन दोनों संत कवियों की कविताओं के विवरणों में अंतर है। हिन्दी आलोचना में अब तक प्रायः यही राह अपनायी गयी है कि कौन कवि वर्णाश्रम के पक्ष में है और कौन विपक्ष में! कबीर और रैदास को वर्णाश्रम के विपक्ष में मानकर प्रायः निर्धारित कर लिया गया है कि दोनों के विचार इस मुद्दे पर प्रायः एक हैं. मगर इन दोनों कवियों की कविताओं का विवरण देखने पर यह बात समझ में आती है कि जाति

---

[14] ओमवेट, गेल, *'भारत में बौद्ध धर्म:*

[15] हावले , जॉन स्ट्रॉगटोन एण्ड मार्क जुरगेनमयर,(1988) *'सॉन्ग ऑफ द सेंट ऑफ इंडिया'* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, इंडिया, पृ. -

[16] वही

[17] (https://www.britannica.com/biography/Ravidas)

[18] ओमेवेट, गेल, भारत में बौद्ध धर्म पृ- 207-208

[19]ओमवेट गेल, भारत में बौद्ध धर्म ..

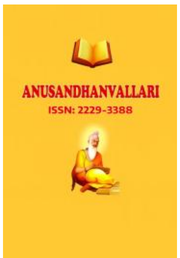

Anusandhanvallari
Vol 2025, No.1
January 2025
ISSN 2229-3388

के प्रश्न पर इनके दृष्टिकोण और सोचने के तरीके में अंतर है। कबीर इस मुद्दे पर आक्रामक हैं और रैदास धैर्यवान! कबीर जाति के आधार पर कड़ी टिप्पणी करने से अपने को रोकते नहीं हैं, मगर रैदास प्रायः कड़ी टिप्पणी नहीं करते हैं। कबीर जातियों के विवरण को हिन्दू और मुसलमान — दोनों समुदायों तक विस्तार देते हैं; मगर रैदास मुसलमानों के समाज पर प्रायः कोई टिप्पणी नहीं करते हैं। कबीर ब्राह्मण और मुल्ला को एक समान मानकर भी प्रतिक्रिया देते हैं, मगर रैदास में ऐसी बातें नहीं मिलती हैं। 'अस्पृश्यता' के मुद्दे पर रैदास की कविताओं में कबीर की अपेक्षा ज्यादा स्पष्टता है। कबीर 'पवित्रता' की तथाकथित कबीर 'पवित्रता' की तथाकथित अवधारणा का विरोध करते हैं, मगर दलित समाज के विरूद्ध अपनायी गयी 'अस्पृश्यता' के बारे में रैदास की कविताएँ ज्यादा सजग हैं। इन दोनों कवियों के संज्ञान में छुआछूत की समस्या बखूबी है, मगर इस प्रकरण में रैदास के प्रयास कबीर से आगे हैं।[20]

निष्कर्ष - भक्ति आंदोलन भारतीय इतिहास का एक परिवर्तनकारी आंदोलन कहा जा सकता है। जिसने सामाजिक समानता के विचार को न केवल सैद्धांतिक बल्कि व्यवहारिक स्तर पर भी नई दिशा प्रदान की। इन तमाम संतों ने उस समुदाय को आध्यात्मिक समानता प्रदान की जो अभी तक उस आध्यात्मिकता से अलग थलग था। मध्यकालीन समाज जो उस समय धार्मिक आडंबरों, कठोर जाति- व्यवस्था एवं सामाजिक विषमताओं से ग्रस्त था ऐसे में भक्ति काल में उभरे इन संतों ने समाज में वैलकल्पिक चेतना का संचार किया। इन संतों ने भारतीय समाज में ये विचार स्थापित किया कि ईश्वर की प्राप्ति एवं भक्ति किसी विशेष जाति, वर्ग, या लिंग तक सीमित नहीं है। बल्कि प्रत्येक मानव की इस भक्ति तक पहुँच है। भक्ति काल में इन संतों अपने विचार लोकभाषाओं में रखे जिसका परिणाम यह हुआ कि सामाजिक रूप से वंचित एवं अशिक्षित वर्ग भी इन विचारों को आत्मसाद कर पाया और अपने मन में समानता एवं आत्मसम्मान की भावना को जगा पाया।

संदर्भ ग्रंथ सूची

[1] Lele, Jayant. *Tradition and Modernity in Bhakti Movements*. E. J. Brill, Leiden.
[2] Fuller, C. J. *The Camphor Flame: Popular Hinduism and Society in India*. Princeton University Press, 1992, p. 158.
[3] Omvedt, Gail. *Buddhism in India: Challenging Brahmanism and Caste*. Sage Publications, 2003.
[4] Srinivasan, M. N. "An Obituary on Caste as a System." *Economic and Political Weekly*, vol. 38, no. 5, 1–7 Feb. 2003, pp. 455–459.
[5] Thapar, Romila. *History of India*. p. 253.
[6] Roy, H. "Political Ideas of Kabir." *Indian Political Thought*, 2nd ed., edited by Singh and H. Roy, Pearson, 2017.
[7] Ahasan, F. (2024). Cultural Capital in Schools as Social Institutions: Bangladesh Rural Government Primary Education. ShodhGyan-NU: Journal of Literature and Culture Studies, 2(1), 1–15. https://doi.org/10.29121/shodhgyan.v2.i1.2024.19
[8] Omvedt, Gail. *Buddhism in India: Challenging Brahmanism and Caste*. Sage Publications, 2003.
[9] Verma, Kamlesh. *[Title Not Specified]*.
[10] Hawley, John Stratton, and Mark Juergensmeyer. *Songs of the Saints of India*. Oxford University Press, 1988.
[11] Zelliot, Eleanor. "Chokhamela, His Family and the Marathi Tradition." *From Stigma to Assertion: Untouchability, Identity and Politics in Early and Modern India*, edited by Mikael Aktor and Robert Deliège, Museum Tusculanum Press, 2008, pp. 76–85
[12] Alam, Muzaffar, and Sanjay Subrahmanyam. *The Mughal State, 1526–1750*. Oxford University Press, 1998.
[13] Chandra, Satish. *History of Medieval India*. Orient BlackSwan, 2007.
[14] Habib, Irfan. *Medieval India: The Study of a Civilization*. National Book Trust, 2008.

[20] वर्मा, कमलेश ..

[15] Hawley, John Stratton. *A Storm of Songs: India and the Idea of the Bhakti Movement*. Harvard University Press, 2015.
[16] Keay, John. *India: A History*. Grove Press, 2010.
[17] Lorenzen, David N. *Bhakti Religion in North India: Community Identity and Political Action*. State University of New York Press, 1995.
[18] Prasad, Ishwari. *A Short History of Muslim Rule in India*. Orient Longman, 1952.
[19] Sharma, Satish Chandra. *Medieval India: From Sultanat to the Mughals*. Har-Anand Publications, 2005.
[20] Singh, Upinder. *A History of Ancient and Early Medieval India: From the Stone Age to the 12th Century*. Pearson Education, 2008.
[21] Thapar, Romila. *Early India: From the Origins to AD 1300*. University of California Press, 2002.
[22] Vaudeville, Charlotte. *Kabir*. Oxford University Press, 1974.
[23] Burchett, Patton E. *A Genealogy of Devotion: Bhakti, Tantra, Yoga, and Sufism in North India*. Columbia University Press, 2019.
[24] Dube, Saurabh. *Untouchable Pasts: Religion, Identity, and Power among a Central Indian Community, 1780–1950*. State University of New York Press, 1998.
[25] Pathak, G. (2023). Echoes of the Past: A Historiographical and Cultural Inquiry into the Enduring Legacy of Medieval Assam Through Religion, Identity and Social Institutions. ShodhGyan-NU: Journal of Literature and Culture Studies, 1(1), 32–45. https://doi.org/10.29121/shodhgyan.v1.i1.2023.66
[26] Eaton, Richard M. *India in the Persianate Age: 1000–1765*. University of California Press, 2019.
[27] Kavuri, S. (2025). AI-driven test automation frameworks: Enhancing efficiency and accuracy in software quality assurance. International Journal of Applied Mathematics, 38(10s), 699–710. https://doi.org/10.12732/ijam.v38i10s.990
[28] Hardy, Friedhelm. *Viraha-Bhakti: The Early History of Kṛṣṇa Devotion in South India*. Oxford University Press, 1983.
[29] Karine Schomer, and W. H. McLeod, editors. *The Sants: Studies in a Devotional Tradition of India*. Motilal Banarsidass, 1987.
[30] McLeod, W. H. *Guru Nanak and the Sikh Religion*. Oxford University Press, 1968.
[31] Gajula, S. (2025). Cybersecurity in supply chain management: Role of identity and access management, zero trust, and blockchain. Asian Journal of Computer Science Engineering, 10(2), 1–11.
[32] Ramaswamy, Vijaya. *Walking Naked: Women, Society, Spirituality in South India*. Orient Longman, 1997.
[33] Stewart, Tony K. *The Final Word: The Caitanya Caritāmṛta and the Grammar of Religious Tradition*. Oxford University Press, 2010.